॥भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत॥

जंगल से मंगल

सन्तराम वत्स्य

सन्तराम वत्स्य

जंगल से मंगल

भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत

मूल्य : सात रुपये / तृतीय संस्करण, १९८५ / प्रकाशक : पराग प्रकाशन, ३/११४, कर्ण गली, विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली-३२ / मुद्रक : गणेश कम्पोजिंग एजेंसी द्वारा रूपाभ प्रिंटर्स, दिल्ली-३२

JANGAL SE MANGAL : Sant Ram Vatsya Rs. : 7.00

जंगल से मंगल

पेड़-पौधों की उत्पत्ति, वनों का महत्त्व, वनों के विकास और वृक्ष लगाने के सम्बन्ध में प्रकाश डालने वाली एक सुगम पुस्तक

पराग प्रकाशन, दिल्ली-३२

वृक्षों की उत्पत्ति और विनाश

आज मनुष्य ने इतनी बौद्धिक और सामाजिक उन्नति कर ली है कि वह इस धरती के चप्पे-चप्पे का उपयोग कर सकता है लेकिन यदि वह इसे शीघ्र ही उपयोग में ले आए तो शायद वह नष्ट हो जाए। अपने आपको बचाने के लिए उसे प्रकृति के नियमों का पालन करना पड़ेगा। इतना ही नहीं, उसे मानव के प्रकृति के साथ जो सम्बन्ध पहले थे, जो अब हैं और जो भविष्य में हो सकते हैं, उनका भी ज्ञान होना चाहिए।

—एक वनस्पतिशास्त्री

हमारी पृथ्वी की उमर का हिसाब लगाने वाले वैज्ञानिकों का कहना है कि कोई तीन अरब वर्ष पहले इसका जन्म हुआ था। तब यह आग के गोले की तरह गर्म थी। उस समय न समुद्र थे, न नदियां, न पेड़-पौधे थे और न प्राणी।

फिर हज़ारों सालों तक होने वाली वर्षा ने पृथ्वी को ठण्डा किया और इस वर्षा के पानी के जमा होने से महासागर बन गए। जीव का जन्म भी सबसे पहले समुद्र में ही हुआ। समुद्र में जन्म लेने वाला यह जीव आज-जैसे किसी भी पौधे या जन्तु से आकार-प्रकार में नहीं मिलता था। यह एक कोशिका वाला

छोटा-सा जीव था, जो अपना भोजन वातावरण से प्राप्त करता था। जब भोजन की कमी महसूस हुई तो कुछ कोशिकाओं ने क्लोरोफिल पैदा किया। तब उन कोशिकाओं ने इसकी सहायता से सूर्य की ऊर्जा के द्वारा कच्चे पदार्थों से अपना भोजन बनाना शुरू कर दिया। इस तरह की कोशिकाओं से पौधों का विकास हुआ।

एक कोशिका वाला जीव

पौधों के साथ-साथ ही उस कोशिकीय जीव से, जो अपना भोजन वातावरण से प्राप्त करता था, जन्तुओं का विकास हुआ।

पर आज जब हम पेड़-पौधों की बात करते हैं तो हमारे सामने पत्तों से भरी टहनियों, खिले फूलों और फलों वाले जिस पेड़-पौधे का चित्र उभरता है, आदिकाल में जन्मा यह पौधा वैसा नहीं था। वह हरी काई जैसा, सेवाल जैसा बहुत ही छोटा पौधा था। वह चाहे कितना भी छोटा रहा हो पर समय पाकर उसी से बड़े-बड़े पेड़ों का जन्म हुआ।

फिर करोड़ों वर्षों में ये पेड़-पौधे सारी पृथ्वी में फैल गए। घने और ऊंचे पेड़ पौधों से सारी पृथ्वी ढंक गई। उस समय के वृक्ष कुछ दूसरी तरह के थे। उन वृक्षों में न तो फूल लगते थे, न फल। करोड़ों वर्षों तक यही हालत रही। फिर पृथ्वी पर विशालकाय रेंगने वाले प्राणी भी पैदा हो गए। बाद में ये प्राणी भी मर-खप गए। ये आज से करोड़ों वर्ष पहले की बातें हैं।

आपके मन में यह प्रश्न उठ सकता है कि उस समय जब अभी मनुष्य का जन्म ही नहीं हुआ था तो उन वनों को और उन रेंगने वाले जानवरों को किसने देखा था?

यह सच है कि किसी भी मनुष्य ने न तो उन वनों को देखा और न उन जीवों को, परन्तु आज भी कोयले की खानों के रूप में उन वनों के पथराए हुए चिह्न (फासिल) मौजूद हैं। और विज्ञान की आंख से हम उन वनों को देख सकते हैं। इसी तरह उन रेंगने वाले विशाल जन्तुओं के हड्डियों के ढांचे भी दबे हुए मिले हैं। इन पक्के सबूतों के आधार पर कहा जा सकता है कि ऐसे वन थे और ऐसे जानवर भी।

फासिल

इसके बाद आज जैसे पेड़-पौधों का जन्म हुआ। इनमें फूल और फल लगने लगे। रेंगने वाले बहुत से जानवर समाप्त हो गए। सांप और गोह जैसे कुछ बच रहे थे। फिर बड़े-बड़े कछुए और चौड़े-फैले पंखों वाले मगरमच्छ और जल-हाथी जैसे जानवर पैदा हो गए। बाद में अपने बच्चों को दूध पिलाने वाले जानवर पैदा हुए। फिर वृक्षों की शाखाओं पर रहने वाले बन्दर जैसे प्राणी पैदा हुए। चींटियां, मधुमक्खियां और तितलियां भी अब तक खूब पैदा हो चुकी थीं।

इस समय वन खूब घने और हरे थे। नये-नये जीव-जन्तु विकसित हो रहे थे। इसी तरह समय बीतता गया। इस तरह आज से कोई दस लाख वर्ष पहले मनुष्य लगभग आज जैसे रूप में पृथ्वी पर प्रकट हो चुका था। वह जंगलों में जानवरों की तरह ही रहता था। वह प्रायः जानवरों को मारकर खाता था। पर कभी-कभी जानवर भी उसे मार डालते थे। फिर हिमयुग आया, जिसकी ठंड से अनेक प्राणी और पेड़-पौधे समाप्त हो गए।

आज से दस हजार साल पहले फिर पृथ्वी का मौसम प्राणियों और पेड़-पौधों के अनुकूल हो गया। अब फिर हरे-भरे पेड़-पौधे लहलहाने लगे। पशु पक्षी और दूसरे जीव-जन्तु भी बढ़ने लगे।

धरती पर जहां सूर्य की गर्मी दूसरी जगहों से ज़्यादा थी, वहीं सबसे पहले जीव-जगत् और वनस्पति-जगत् का विकास हुआ।

इन डरावने जंगलों और जंगली जानवरों के बीच कद में छोटा मनुष्य,

शारीरिक शक्ति में भी उनसे काफी कमजोर था। उसके पास लड़ने-भिड़ने के लिए न सींग थे और न तीखे नाखूनों वाले पंजे। उसके पास उन पशुओं जैसे दांत और जबड़े भी नहीं थे। फिर भी अपने बुद्धि-बल से वह सिंहों, हाथियों, बाघों और भालुओं आदि से जूझता रहा। अपने पत्थर और लकड़ी के हथियारों से वह उन पर हमला करता और अपना बचाव भी।

जब मनुष्य ने आग जलाना सीख लिया तो उसे बड़ी चैन मिली। अब सर्दी लगने पर वह आग से तापता और मांस को भूनकर खाता। रात को वह आग जलाकर रखता जिससे जंगली जानवर उसके पास नहीं फटकते थे।

आग को जलता रखने के लिए वह पेड़-पौधों को काटने लगा। फिर जब उसने खेती करना सीख लिया और घुमन्तू जीवन छोड़कर एक जगह टिककर रहने लगा तो उसे खेती के लिए साफ़ ज़मीन की ज़रूरत पड़ी। इसके लिए वह तेज़ी से जंगलों को काटकर जमीन को नंगा करने लगा। इस नंगी धरती पर चलते समय जंगली जानवर घबराते थे। मानव-प्राणी जंगली जानवरों को अपने से दूर ही रखना चाहता था। इसलिए जंगल काटने से उसे उस समय दोहरा लाभ हुआ। मनुष्य की समझ बढ़ रही थी और आवश्यकताएं भी। खेती से उसकी भोजन की साल-भर की आवश्यकता पूरी होने लगी। जंगली जानवरों से अपना बचाव करने के भी उसने नये और बढ़िया तरीके खोज निकाले। इससे धरती पर मनुष्यों की संख्या दिन दूनी, रात चौगुनी बढ़ने लगी और इतनी ही तेजी से जंगल अंधाधुन्ध कटने लगा।

जंगलों के कटने से एक बड़ी हानि यह हुई कि जगह-जगह बरसात के बहते पानी से मिट्टी का कटाव शुरू हो गया। तेज बहते पानी के रास्ते में कोई रुकावट न होने से बाढ़ें आने लगीं। पानी के साथ बहकर गई मिट्टी से नदी-नालों के पाट भरने लगे और वे अपने किनारों को तोड़-तोड़कर फैलने लगे। पेड़ों की जड़ें धरती में गहराई तक होने के कारण वर्षा का पानी धरती सोख लेती थी। इस तरह धरती में काफी दिनों तक नमी बनी रहती थी—पेड़ों को भी

जड़ों द्वारा पानी मिल जाता था। जड़ें जो पानी को सोखने का काम करती थीं, पेड़ों के कट जाने से वह बन्द हो गया। अब जो पानी बरसता, वह ऊपर की मिट्टी को तर करके तुरन्त बह जाता और सतह की उपजाऊ मिट्टी को भी अपने साथ बहा ले जाता। इस तरह के कटाव से कंकर-पत्थर और रेतीली धरती निकलने लगी। यह धरती नमी-रहित होती। जब हवाएं चलतीं तो सूखी रेत के बवंडर उड़ने लगते और मिट्टी के कटने का काम और तेज हो जाता। नमी के न होने से बाकी छोटी-मोटी वनस्पतियां सूखने लगतीं और मर जातीं।

वनस्पतियों और पशु-पक्षियों में बड़ा गहरा सम्बन्ध है। इसे 'प्राकृतिक सन्तुलन' कहते हैं। इस बात को और अच्छी तरह समझने की आवश्यकता है। वनस्पतियों को खाकर घास-पात खाने वाले जानवर पलते-बढ़ते हैं। उनके मल-मूत्र से और सूखी वनस्पतियों के सड़ने-गलने से धरती की उपजाऊ शक्ति बढ़ती है। इन घास-पात खाने वाले हिरण जैसे जानवरों को मार-खाकर शेर-चीता

जैसे मांस खाने वाले जानवर बढ़ते हैं। अब अगर मांस खाने वाले इन शेर-चीते आदि जानवरों का शिकार न किया जाए तो पेड़-पौधों की मात्रा और जानवरों के अनुपात में कभी भी विशेष फर्क नहीं पड़ता।

किन्तु यदि शिकार के शौक में मांस खाने वाले जानवर मार डाले जाएं तो घास-पात खाने वाले जानवरों की संख्या बढ़ जाएगी, क्योंकि उन्हें मार खाने वाले शेर-चीते जो कम हो गए। तब ये घास-पात खानें वाले जानवर तेजी से बढ़ते जाएंगे और वे जंगल के घास-पात को चरकर सफाया कर डालेंगे। फिर वे अपना पेट भरने के लिए पास-पड़ोस के खेतों की ओर दौड़ेंगे।

यदि किसी कारण मांस खाने वाले जानवर बढ़ जाएं तो वे घास-पात खाने वाले जानवरों को मारकर समाप्त कर देंगे और पेड़-पौधों की संख्या बढ़ जायेगी।

प्राणियों में सबसे बुद्धिमान जीव मनुष्य को चाहिए कि वह प्रकृति के इस सन्तुलन को अपनी मूर्खता और लापरवाही से न बिगाड़े, नहीं तो इसका बुरा परिणाम उसे ही भोगना पड़ेगा।

कई जगह ऐसा भी हुआ कि मांस खाने के शौकीन लोगों की जरूरत पूरी करने के लिए बकरियां पालना शुरू किया गया। इन बकरियों ने सारी हरियाली चर डाली। बात यह है कि बकरी उन सभी तरह की पत्तियों को खा जाती हैं, जिन्हें दूसरे जानवर छूते तक नहीं। यह छोटा जानवर वनस्पति का जितना विनाश करता है, दूसरे जानवर उतना नहीं करते। इसके पैने खुरों से धरती का कटाव भी खूब होता है। इसलिए मरुस्थलों को बनाने में बकरियों का बड़ा भारी हाथ है।

मनुष्यों ने सांपों को अपना घोर शत्रु समझकर खूब मारा है। परिणाम सामने है। सांपों के मर जाने से, उनके द्वारा खाए जाने वाले चूहों की संख्या बहुत बढ़ गई और उन्होंने अन्न को खूब क्षति पहुंचायी। प्राकृतिक सन्तुलन बनाए रखने में पक्षी भी बड़ा काम करते हैं। वनस्पति-भोजी टिड्डे और कीड़े

पौधों और फूलों-फलों को बहुत हानि पहुंचाते हैं। ये बढ़ते भी बहुत जल्दी हैं। ये बड़े पेटू होते हैं। दिनभर खाते ही रहते हैं। ये पौधों की बढ़ोतरी को रोक देते हैं। फूलों को खाकर उन्हें फल लगने योग्य नहीं रहने देते और फलों को दागी कर देते हैं जिससे फल सड़ जाते हैं और खाने योग्य नहीं रहते। इन कीट-पतंगों की रोकथाम ये पक्षी ही करते हैं। पक्षी इनको खूब खाते हैं। जिन फलों को पक्षी खाते हैं, उनके बीज बीट में साबुत निकल जाते हैं। इस तरह पक्षी बीजों को दूर-दूर तक फैला देते हैं।

मनुष्य ने अपने शिकार के शौक में या लोभ-लालच के कारण जंगल के

पशु-पक्षियों को मारकर बहुधा प्राकृतिक सन्तुलन को बिगाड़ दिया है। हाथी-दांत के लिए हाथियों का, खाल के लिए बाघों और मगरमच्छों का, मांस के लिए हिरण-चीतलों का तथा सींगों के लिए बारहसिंगों का, कस्तूरी के लिए कस्तूरी मृगों का, रोयेंदार मुलायम खालों के लिए अनगिनत पशुओं तथा मांस और परों के लिए पक्षियों का विनाश किया है।

आज भी जब अनेक जंगली पशुओं को मारना कानून द्वारा अपराध घोषित कर दिया गया है, समाचारपत्रों में यह पढ़कर आश्चर्य होता है कि अमुक स्थान पर इतनी खालें पकड़ी गईं।

निश्चय ही अवैध रूप से किए गये इस पशु-संहार में उन लोगों की मिली-भगत नजर आती है, जिनका काम उनकी सुरक्षा करना है।

अनेक वन्य-पशुओं के वंश-विनाश का भय पैदा हो गया है। इसीलिए सरकार ने केवल उन्हें मारने पर प्रतिबन्ध लगाकर ही सन्तोष नहीं कर लिया, उनकी सुरक्षा के दूसरे उपाय भी किए गए हैं। 'अभयारण्य' उन जंगलों को कहते हैं जिनमें शिकारियों का प्रवेश निषिद्ध है। यहां ये जानवर बेखटके रहते हैं। चिड़ियाघरों में भी गोली दागने वालों से निर्भय होकर रहते हैं यद्यपि जंगल जितनी स्वतंत्रता तो यहां नहीं होती।

मनुष्यों द्वारा जाने या अनजाने वनों का जो विनाश हो रहा है, इसमें आग लगने पर जैसी और जितनी जल्दी हानि होती है, वैसी दूसरे कारणों से नहीं होती। आग लगने के जिम्मेवार भी लापरवाह लोग ही होते हैं। सूखी पत्तियों पर पड़े बीड़ी-सिगरेट के टुकड़ों से लेकर गड़रियों, चरवाहों और इमारती लकड़ी काटने वालों द्वारा जलाए गए अलावों को बिना बुझाए छोड़कर चले जाने तक से ये दुर्घटनाएं होती हैं।

वन-सम्पदा के अन्धाधुन्ध विनाश का एक प्रमुख कारण है—ठेकेदारी पद्धति, जिसके द्वारा जंगलों से प्रतिवर्ष वृक्ष काटने का कार्य होता है।

सरकार काटने योग्य वृक्षों को चिह्नित करके जंगलों को नीलाम कर देती

है। जिस ठेकेदार को ठेका मिलता है, वह जंगल की सुरक्षा के लिए नियुक्त अधिकारियों से साठ-गांठ करके अधिक वृक्ष काट लेता है। चोरी से काटे जाने वाले ये वृक्ष अभी पूरी तरह तैयार नहीं होते हैं। ये यदि काटे न जाएं तो लम्बाई और मोटाई में और बढ़ सकते हैं और उनसे ज़्यादा लकड़ी मिल सकती है। पर अपने स्वार्थ के लिए देश की सम्पत्ति का विनाश करने वाले इन लोगों को कौन समझाए और कैसे समझाए ! जब बाड़ ही खेत को खाने लगे तो फिर रक्षा का काम किसे सौंपा जाए !

अब जबकि जंगलों के विनाश से पैदा होने वाला भयानक खतरा मुंह फाड़े सामने आ खड़ा हुआ है तो सोचा जा रहा है कि ठेकेदारी प्रथा को समाप्त कर दिया जाए। ठीक ही है, सुबह का भूला भी यदि शाम को घर आ जाए तो उसे भूला नहीं समझना चाहिए।

उत्तर प्रदेश के पहाड़ी वन्य क्षेत्र अलमोड़ा और कुमाऊं के जागरूक ग्रामीणों ने वृक्षों को काटने से रोकने के लिए सफल आन्दोलन चलाकर सरकार और जनता का ध्यान पूरी तरह इस समस्या की ओर खींचा था। इस आन्दोलन का नाम था 'चिपको आंदोलन'। जिन वृक्षों को वन-विभाग के लोगों ने काटने के लिए चिह्नित किया होता और ज्यों ही काटने वाले उसे काटने लगते, ग्रामीण उस वृक्ष से चिपक जाते और तब तक चिपके रहते, जब तक ठेकेदार और उनके आदमी वहां से अपने कुल्हाड़े उठाकर वापस नहीं चले जाते।

वृक्ष काटने वालों की लापरवाही और वृक्ष काटने की विकसित विधि के अभाव में, जब काटे हुए वृक्ष गिरते हैं तो वे दूसरे कई छोटे वृक्षों पर गिरकर उन्हें भी जमीन पर गिरा देते हैं। इससे होने वाली हानि का अनुमान लगाया जाए तो पता लगता है कि प्रति वर्ष इससे करोड़ों की हानि हो जाती है।

वन-सम्पदा के समुचित विकास और उपयोग के लिए हमारे देश में 'वन अनुसंधान शाला', देहरादून, वर्षों से कार्य कर रही है। यह केन्द्रीय संस्था है।

वैसे 'वन' संरक्षण और संवर्धन का कार्य राज्य सरकारों के अधीन है। जानकार लोगों का कहना है कि यह भी एक कारण है जिससे सारे देश में वन-सम्पदा और वन्य जीवन की सुरक्षा के लिए एक समान नीति अपनाने में रुकावट आती है। इसलिए सोचा जा रहा है कि यह विषय राज्य सरकारों के बजाय केन्द्रीय सरकार के अधीन रखा जाए।

इधर सन् १९७६ में केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकार का ध्यान वन-संरक्षण तथा शहरी और देहाती क्षेत्रों में वृक्ष लगाने की ओर विशेष रूप से गया है। शहरी क्षेत्रों में बड़ी संख्या में वृक्ष लगाने का काम हुआ है। अब आवश्यकता इस बात की है कि इन नये पौधों की ठीक से देख-भाल की जाए ताकि ये जीवित रह सकें।

अनेक राज्य सरकारों ने वृक्षों की अन्धाधुन्ध कटाई को रोकने के लिए कानून बनाए हैं। उत्तर प्रदेश सरकार ने तो वृक्षों को काटने पर एकदम पाबन्दी लगा दी है। वहां अधिकारियों से आज्ञा प्राप्त किए बिना कहीं भी, किसी वृक्ष को काटा नहीं जा सकता और यदि किन्हीं आवश्यक कारणों से वृक्ष को काटने की स्वीकृत भी दी गई तो वृक्ष काटने वाले को एक वृक्ष के बदले दो नये वृक्ष लगाने पड़ेंगे। यह प्रशंसनीय और अनुकरणीय कदम है, जिसे उठाने में उत्तर प्रदेश ने पहल की है।

हिमाचल प्रदेश ने वन-संवर्द्धन की एक पंचवर्षीय योजना बनाई है। इस वर्ष हिमाचल प्रदेश ने तीन करोड़ वृक्ष लगाने का निश्चय किया है। ११,००० वर्ग किलोमीटर भूभाग को सघन वन क्षेत्र बनाने का भी आयोजन किया है। इसी तरह पूर्वांचल के वन्य भूमि भाग वाले प्रदेशों ने भी इस दिशा में क्रियात्मक पग उठाए हैं। जोधपुर स्थित केन्द्रीय मरुभूमि शोध संस्थान ने रेगिस्तान के विस्तार को रोकने के लिए आर्थिक और वातारण की दृष्टि से उपयोगी पेड़-पौधों और घासों की हजारों किस्में विकसित की हैं। इसका लाभ गुजरात, राजस्थान, हरियाणा और पंजाब के सूखे क्षेत्र को हरा-भरा करने में मिलेगा। इस संस्था

ने इन वनस्पतियों की पौध तैयार कर ली है, जो पेड़-पौधे लगाने वाली संस्थाओं को मिल सकेगी ।

रेगिस्तान प्रतिवर्ष अपना विस्तार कर रहा है । सुरसा राक्षसी की तरह बढ़ते इस खतरे को रोकने के लिए इसके सब ओर वृक्षों की हरी-भरी दीवार खड़ी करनी होगी । इतना ही नहीं, रेगिस्तान के नंगे शरीर को भी घास और पेड़-पौधों की हरी चादर से ढकना होगा ।

प्राचीन भारत में वृक्षों की महत्ता

वन एक विचित्र जीव-समुदाय है जिसमें असीम दया और सहिष्णुता भरी हुई है। वह अपने पोषण के लिए किसी से कुछ नहीं मांगता। उसका हृदय इतना विशाल है कि वह अपने निजी जीवन के फल को बड़ी उदारता से सम्पूर्ण लोक को अर्पित करता रहता है। वह सब जीवों की रक्षा करता है—यहां तक कि उस लकड़ी काटने वाले को भी अपनी छाया से विश्राम देता है, जो इसे सदा नष्ट करता है।

—भगवान बुद्ध

भारत की संस्कृति और सभ्यता का विकास नगरों में नहीं, वनों में हुआ है। वहां मानव-शिशु पेड़-पौधों के बीच रहकर बढ़ते थे। वन उस समय हमारे लिए न तो डरावने थे और न ही हम जंगलों में रहकर जंगली बन गए थे। इससे बिलकुल उल्टी बात हुई थी। हमने 'वन' को 'तपोवन' बना दिया था और जंगली हिंसक जानवर भी इन तपोवनों में बैर भूलकर प्रेम से एक साथ रहते थे। यही हमारी आरण्यक संस्कृति कहलायी।

वनों के हरे-भरे वृक्षों ने उन्हें सूर्य की प्रचण्ड गर्मी से बचाया, उनके पशुओं

के यहां कभी घास पात की कमी नहीं हुई। उन्हें यहां अपने लिए कुटिया बनाने के लिए आवश्यकता के अनुसार लकड़ियां, बांस और छाने के लिए घास-पात भी मिल गए। ये वृक्ष ही उन्हें मीठे फल और शहद भी देते थे। जलावन के लिए सूखी लकड़ियां भी खूब थीं। जड़ी-बूटियों से ही वे रोगों की चिकित्सा भी कर लेते।

इन सुविधाओं के सहारे हिन्दुओं ने देश-भर में फैले जंगलों में अपने गांव बसा लिये थे। वे जंगलों को तरह नदियों से भी प्यार करते थे। हिन्दुओं के अधिकतर तीर्थस्थान नदियों और जलाशयों के किनारे ही हैं। इस प्रकार हमारी संस्कृति और सभ्यता को प्रकृति के चारों ओर फैले जीवन से ही जीवन मिला। प्रकृति ही इसकी मां बनी। प्रकृति के सहयोग से ही हमारी सभ्यता का पालन-पोषण हुआ।

हमारे महर्षियों ने प्रकृति को कभी भी अपना शत्रु नहीं समझा। इसके विपरीत प्रकृति के साथ ताल-मेल ही हमारे जीवन का आदर्श रहा।

वेदों में अनेक वृक्षों, बेलों और पुष्पों के नाम आए हैं। साथ ही पशु-पक्षियों के नामों की लम्बी सूची है।

हम यह जानते और मानते थे कि वनस्पति जगत् हमारा प्यारा मित्र है। मित्र भी ऐसा जो हमें सदा लाभ पहुंचाता है और बदले में कुछ नहीं चाहता।

यही कारण था कि हमने वृक्षों को लगाना और सींचना अपना धर्म माना। भला जिन वृक्षों से हमें जीवन के अनेक लाभ मिले, उन्हें हम उचित महत्त्व और मान क्यों न देते!

मनु महाराज ने पेड़-पौधों को नष्ट करने वालों के लिए दण्ड का कानून बनाया था। औषधों में प्रयोग होने वाली जड़ी-बूटियों को नष्ट करने वालों के लिए भी दण्ड निश्चित था। जलावन के लिए हरे पेड़ को काटना मना था। इसी प्रकार जंगली पशुओं को मारने की भी आज्ञा नहीं थी और आज्ञा का उल्लंघन करने वाले के लिए मारे गए पशुओं की जाति के अनुसार दण्ड निश्चित

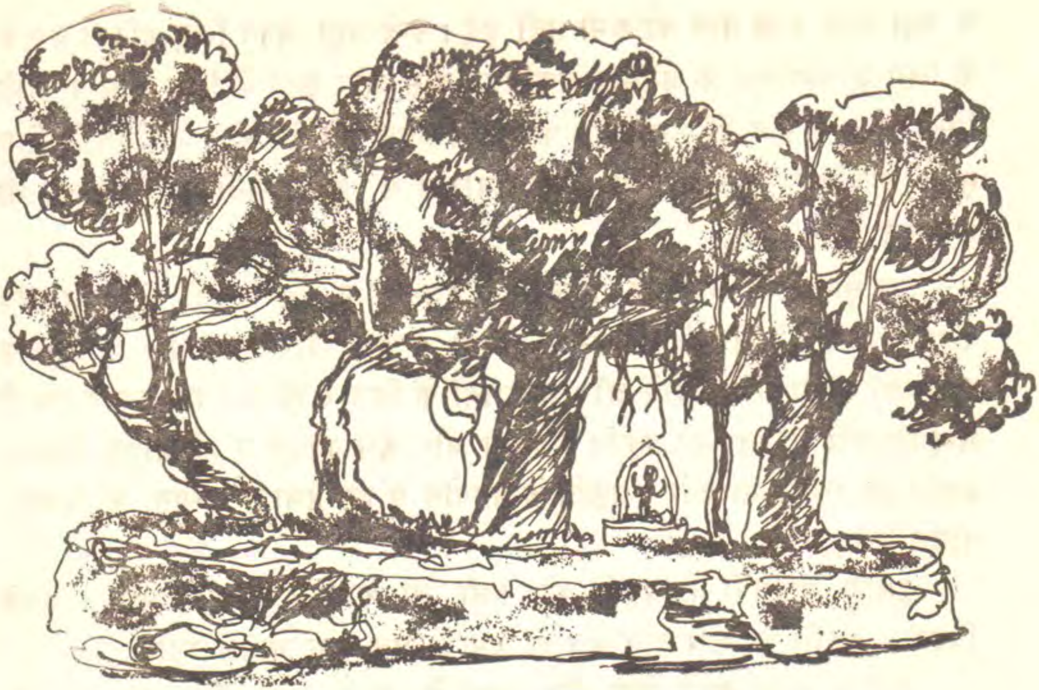

था । बाग-बगीचे लगाना बड़े पुण्य का काम समझा जाता था और उन्हें बेचना पाप समझा जाता था ।

महर्षि कश्यप ने तो वृक्षों के सम्बन्ध में एक पूरा शास्त्र रचा है । महर्षि कश्यप ने अपने वृक्ष-आयुर्वेद में स्पष्ट लिखा है—देव-स्थान के वृक्षों को तथा तीर्थ-स्थान के वृक्षों को और जवान वृक्षों को छोड़कर आंधी से गिरे हुए या जिनकी चोटी सूख गयी है, ऐसे ही वृक्षों को जलावन के लिए काटा जा सकता है ।

वृक्ष लगाने और काटने के लिए भी कुछ मुहूर्त देखकर काम करने की आज्ञा है । खेतों में पहला हल भी शुभ मुहूर्त में ही चलाने का विधान है । वृक्ष कब, कैसे और कितनी दूरी पर लगाने चाहिए, इसका भी उल्लेख है । भूमि को उपजाऊ बनाने की विधियों का भी निर्देश है ।

कौन-कौन से वृक्ष लगाने चाहिए, कौन-सा वृक्ष किस ओर लगाना चाहिए, पहले कौन-से लगाने चाहिए और बाद में कौन-से—इन बातों को भी महर्षि कश्यप लिखना नहीं भूले हैं।

कलम से लगने वाले वृक्ष किस प्रकार लगाए जाएं, इसका पूरा विवरण दिया गया है।

जो वृक्ष सूखने लगें, जिनमें कीड़ा लग जाए या जिन वृक्षों पर फल न लगें तो उनका उपचार भी बताया गया है।

पांच वृक्ष (वट, पीपल, आम, उदुम्बर तथा विदार) पास-पास लगाना और उनके लिए बड़ा चबूतरा बनाना बड़े पुण्य का कार्य समझा जाता था। इसे पंजरूक्खी (पांच रूख—वृक्ष) लगाना कहते हैं। हिमाचल प्रदेश में अब भी इस परम्परा का पालन होता है। वहां इस तरह के नाम वाले जैसे पंजरूक्खी, त्रै बड़ (तीन बड़), पंच बड़ (पांच बड़) स्थान विद्यमान हैं। स्पष्ट है कि ये नाम वृक्षपरक हैं। वट, पीपल आंमले और बेल के वृक्ष देश-भर में पूज्य माने जाते हैं। इन देव वृक्षों से लोहा छुआना भी पाप माना जाता है। वटसावित्री पर्व पर वट की, आमलकी एकादशी को आमले के वृक्ष की पूजा होती है। पीपल की पूजा तो सामान्यतया प्रतिदिन और विशेष रूप से शनिवार को होती ही है। उस दिन सूर्योदय से पूर्व दूध और चीनी मिला जल पीपल के मूल में दिया जाता है। 'गीता' में भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी विभूतियों का वर्णन करते समय कहा है कि वृक्षों में मैं पीपल हूं। बेल और तुलसी के पत्तों में भगवान शंकर और विष्णु की पूजा सनातनधर्मी करते हैं।

पद्मपुराण में जलाशय के पास, मार्ग के दोनों ओर तथा हाट-बाज़ार में छाया वाले फल-फूल वाले वृक्षों को लगाने की बात कही है।

भगवान् बुद्ध ने गया में 'बोधिवृक्ष' के नीचे बैठकर तपस्या की और बोध प्राप्त किया। यह वृक्ष आज भी विद्यमान है और श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है। उसकी शाखा समारोहपूर्वक ले जाकर श्रीलंका में महेन्द्र और संघमित्रा ने लगाई थी।

प्राचीन साहित्य में वन-विनाश करने वालों को रोकने की एक रोचक कहानी है।

प्राचीन महर्षि तथा समुद्र की पुत्री सवर्णा के दस पुत्र थे। इन दसों पुत्रों का सामूहिक नाम 'प्रचेतस' था। इन्होंने समुद्र के जल में रहकर दस हजार वर्षों तक तपस्या की। उस समय धरती पर जंगल ही जंगल थे। वृक्षों की वृद्धि को देखकर ये प्रचेतस वृक्षों को नष्ट करने लगे। इनके द्वारा वृक्षों का विनाश होते देखकर वृक्षों के अधिपति सोम ने इन्हें वृक्षों को नष्ट करने से रोका। सोम के पास एक गोद ली हुई कन्या थी। इसका नाम था मारिषा। यह कन्या सोम ने इन्हें ब्याह दी।

मारिषा कण्डु ऋषि की पुत्री थी और प्रम्लोचा नामक अप्सरा से उत्पन्न हुई थी। इसका जन्म होते ही, प्रम्लोचा अप्सरा ने इसे एक पेड़ के नीचे रख दिया और स्वर्ग चली गई। जब यह नवजात कन्या रोने लगी तो सोम देवता ने अपनी तर्जनी से इसे अमृत पिलाकर जीवनदान दिया और पाल-पोसकर बड़ा किया।

इसी मारिषा से दक्ष प्रजापति का जन्म हुआ था। स्त्री-पुरुष के जोड़े द्वारा मानवी सृष्टि का प्रारम्भ दक्ष प्रजापति ने ही किया था। वनस्पतियों के अधिपति सोम ने इस प्रकार वृक्षों को विनाश से बचाया।

प्राचीन काल में वृक्षों ने हमारे साथ कैसा मैत्री-सम्बन्ध स्थापित कर लिया था, इसका एक उदाहरण महर्षि अंगिरा द्वारा महर्षि भृगु से आश्रम-विषयक योगक्षेम के सम्बन्ध में पूछे गए प्रश्नों से लगता है। महर्षि अंगिरा एक बार महर्षि भृगु के आश्रम में पधारे थे। तब उन्होंने आश्रम-विषयक जो बहुत-सी बातें पूछी थीं, उनमें ये प्रश्न भी थे :

"आपके आश्रम में अश्वत्थ और न्यग्रोधादि महा वृक्ष तो विशाल स्कन्ध और शाखा-प्रशाखाओं के साथ फैलते हैं। उनकी अनन्त प्रसारवाली शाखाएं, नीचे झुकी जटाएं पृथ्वी पर आकर फिर पादप जैसी प्रतीत होती हैं या नहीं ? उनके पुराण कोटरों में दूर दिशाओं से आकर पक्षी सुखपूर्वक निवास और कलरव

करते हैं या नहीं ? छायादार वट-वृक्षों की छाया में सरस्वती के पुण्य तीर पर ब्रह्मचारी अपने लिए तथा अभ्यागत मुनियों के लिए स्थण्डिल समेत पर्णकुटी की रचना में उत्साहप्रदर्शित करते हैं या नहीं ? अश्वत्थ और न्यग्रोधों को देख-कर आपके ब्रह्मचारियों को संसार-विटप का ध्यान आता है या नहीं ?"

विनोबाजी की एक बोध-कथा वृक्षों के महत्त्व पर बड़े सुन्दर ढंग से प्रकाश डालती है।

"राम और परशुराम की पहली भेंट धनुष-यज्ञ वाले प्रसंग में हुई थी। परशुराम को उसी समय रामचन्द्र से जीवन-दृष्टि मिली थी। उसके बाद बहुत दिनों तक उन दोनों की भेंट नहीं हुई। लेकिन अपने वनवास के दिनों में रामचन्द्र पंचवटी में आकर रहे तो वहां उनके निवास के आखिरी वर्ष में बांगलाण की तरफ से परशुराम उनसे मिलने आए। जब वे पंचवटी में पहुंचे तो रामचन्द्रजी पौधों को पानी दे रहे थे।

परशुराम से मिलकर राम को बड़ा आनन्द हुआ। राम ने तपस्वी और वृद्ध परशुराम का साष्टांग प्रणाम कर स्वागत किया और कुशल प्रश्नादि के बाद उनके कार्यक्रम के बारे में पूछा। परशुराम ने कुल्हाड़ी के अपने नये प्रयोग का सारा हाल रामचन्द्र को सुनाया। रामचन्द्र ने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। दूसरे दिन परशुराम वहां से लौट गए।

अपने स्थान पर पहुंचते ही उन्होंने उन नये ब्राह्मणों को राम का सारा हाल सुनाया और बोले, "रामचन्द्र मेरा गुरु है। अपनी पहली ही भेंट में उसने मुझे जो उपदेश दिया, उससे मेरी वृत्ति पलट गयी और मैं तुम्हारी सेवा करने लगा। अब की भेंट में उसने मुझे शब्दों द्वारा कोई उपदेश नहीं दिया, लेकिन उसके काम से मुझे उपदेश मिला। वही मैं अब तुम लोगों को सुनाता हूं। हम लोग जंगल काट-काटकर बस्ती बसाने का यह जो कार्य कर रहे हैं, यह बेशक उपयोगी है लेकिन इसकी भी मर्यादा है। उस मर्यादा को जाने बिना हम अगर पेड़ काटते रहे तो वह एक बड़ी भारी हिंसा होगी। कोई भी हिंसा अपने कर्ता पर

उलटे बिना नहीं रहती, यह तो मेरा निजी अनुभव है। इसलिए अब हम पेड़ काटने का काम खत्म करें। आज तक जितना कुछ किया, सो किया। अब हमें जीवनोपयोगी वृक्षों की रक्षा का काम भी अपने हाथों में लेना चाहिए।''

यह कहकर परशुराम ने उन्हें आम, केले, नारियल, काजू, कटहल, अनन्नास आदि छोटे-बड़े फलदार वृक्षों के लगाने की विधि सिखाई।

वन्य जीवन की चर्चा करते समय महाभारत-काल में खाण्डव वन के पशु-पक्षियों सहित जलाए जाने का प्रसंग बरबस याद आ जाता है। श्रीकृष्ण और अर्जुन ने अग्निदेव की प्रार्थना पर उन्हें तृप्त करने के लिए, इस वन को भस्म करने की स्वीकृति दी थी और जब देवराज इन्द्र इस अग्नि को शांत करने के लिए मूसलाधार वर्षा करने लगे थे तो अर्जुन ने उनका प्रतिकार किया था। इन नर-नारायण को किसलिए, किस परिस्थिति में यह वन-विनाश करना पड़ा, यह तो वे ही जानें, किन्तु लगता है कि भविष्यद्रष्टा श्रीकृष्ण 'इन्द्रप्रस्थ' बसाने की पूर्वपीठिका तैयार कर रहे थे, क्योंकि बाद में इसी स्थान पर श्रीकृष्ण की प्रेरणा से देवराज इन्द्र ने विश्वकर्मा को नगर बनाने और उसका नाम 'इन्द्रप्रस्थ' रखने के लिए कहा था। इसके बाद की कहानी ईंट-चूने-गारे और सूखी लकड़ी से बने नगर-रूपी जंगलों के विकास और प्राकृतिक वनों के निरन्तर विनाश की कहानी है। 'सभ्यता के विकास की कहानी' ही 'वनों के विनाश की कहानी' है। पर हम यह न भूलें कि जो सभ्यताएं वन-विनाश के साथ फूलीं-फलीं, वे नष्ट हो गयीं। प्रकृति ने कब किसी को क्षमा किया है!

आज फिर हम नव-निर्माण की दिशा में पग बढ़ा रहे हैं। सदियों से प्रकृति से टूटा नाता फिर जुड़ रहा है। देश ने वृक्षों के महत्त्व को फिर पहचाना है और वृक्षारोपण-अभियान जारी है। आज राष्ट्र अधिकाधिक वृक्ष लगाकर प्राचीन स्वस्थ परम्परा की ओर अग्रसर हो रहा है।

वनों का महत्त्व

"वन नष्ट होते हैं तो जल नष्ट होता है, मछलियां और वन के जानवर नष्ट होते हैं, फसलें नष्ट होती हैं, पशु नष्ट होते हैं, उर्वरता विदा ले लेती है और तब ये पुराने प्रेत एक के पीछे एक प्रकट होने लगते हैं—बाढ़, सूखा, आग, अकाल और महामारी।"

—रॉबर्ट चैम्बर (स्कॉटलैंड)

"जब लम्बे-चौड़े वन उजाड़ दिए जाते हैं, उस ज़मीन पर प्रकृति की शक्तियां अपनी करतूत दिखाती हैं। हवा, धूप और पाला मिट्टी को धूल में बदल देते हैं और हवा उस धूल को उड़ा ले जाती है। बच जाती है ऊसर पथरीली ज़मीन। वहां रेगिस्तान बन जाता है, फिर यह रेगिस्तान पांव पसारने लगता है – पेड़-पौधों और हरियाली को लीलता हुआ। सहारा के एक आंचल में रेगिस्तान तीस मील प्रति वर्ष की चाल से फैलता हुआ देखा गया है।"

—ट्रैवर हालोवे (वन-विशेषज्ञ)

देश के प्राकृतिक संसाधनों में वनों का स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण है। वनों से हमें कई प्रकार की वस्तुएं और सेवाएं प्राप्त होती हैं जिनका हमारे जीवन और देश के विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। देश की जलवायु. वर्षा, खेती की पैदावार,

उद्योग-धन्धों और देश की आय तथा रोजगार पर वनों का बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है ।

हमें वनों से जो लाभ होते हैं, उन्हें मोटे तौर पर दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—प्रत्यक्ष लाभ और परोक्ष लाभ ।

प्रत्यक्ष लाभ

वनों से हमें अनेक प्रत्यक्ष लाभ प्राप्त होते हैं । कुछ मुख्य प्रत्यक्ष लाभ निम्नलिखित हैं—

१. ईंधन

हमारी सबसे पुरानी और पहली आवश्यकता जलावन की लकड़ी को है । यह लकड़ी हमें वनों से ही प्राप्त होती है ।

२. इमारती लकड़ी

जलावन की लकड़ी के अलावा सैकड़ों तरह की इमारती और व्यापारी लकड़ी हमें वनों से मिलती है । इसमें सागवान, देवदार, साल, शीशम, आबनूस, चीड़, चन्दन आदि मुख्य हैं । इनसे घरों की चौखटें, दरवाजे, खिड़कियां, अलमारियां आदि बनाने के अलावा मेज-कुर्सी, सन्दूक-सोफा आदि तथा खेल का सामान जैसे हॉकी, बल्ले, विकेट और रेल की पटरियों के नीचे बिछाने के स्लीपर, रेल के डिब्बे, खेती के औजार, छोटी-बड़ी नावें तथा अनेक अन्य वस्तुएं तैयार होती हैं ।

३. कच्चा माल

वनों से उद्योग-धन्धों को चलाने के लिए हमें कच्चे माल के रूप में अनेक वस्तुएं मिलती हैं । इनमें राल, लाख, गोंद, रबड़, बेंत, बांस, और घास, तारपीन का तेल, रंग इत्यादि प्रमुख हैं । इनमें से कई चीजों का विदेशों को निर्यात किया

जाता है। बांस और एक विशेष प्रकार की घास का उपयोग कागज़ बनाने के लिए किया जाता है। 'खैर' नामक वृक्ष की छाल से कत्था बनता है जो पान के अतिरिक्त दवाइयों में भी पड़ता है। कई पेड़ों की छाल चमड़ा रंगने के काम आती है। चीड़ वृक्ष का तेल, जिसे तारपीन कहते हैं, अनेक उद्योगों में काम आता है। लाख से ग्रामोफोन के रिकार्ड बनते हैं और यह लकड़ी पर पालिश करने में भी काम आती है। प्लास्टिक में भी लाख का उपयोग होता है। रेयन के धागे और दियासलाई की तीलियां भी लकड़ी से तैयार होती हैं।

४. जड़ी-बूटियां

वनों में अनेक प्रकार की जड़ी-बूटियां मिलती हैं जो दवाइयों के काम आती हैं। कितने ही फूल-फल, मूल, वनस्पति और रसायन हमें वनों से मिलते हैं, जो दवाइयों और खाने के काम आते हैं।

५. पशुओं के लिए चारा

वन पशुओं के लिए चारा, पक्षियों और जंगली जानवर के लिए भोजन और निवास प्रदान करते हैं।

६. रोज़गार

वनों से बहुत से लोगों को रोज़गार मिलता है। वृक्षों की कटाई, चिराई, ढुलाई आदि से लाखों लोगों को रोज़गार मिलता है। फिर जब लकड़ी शहरों में पहुंच जाती है तो लकड़ी के व्यापारी, उनके कर्मचारी, आराकश और बढ़ई इससे आजीविका कमाते हैं। जहां लकड़ी से प्लाईवुड और काग़ज़ की लुगदी तैयार होती है, वहां भी बहुत से लोगों को काम मिलता है। लकड़ी के खिलौने तथा बहुत-सी सजावटी चीज़ें बनती हैं, जिन पर नक्काशी का काम किया जाता है। अनुमान है कि कोई बीस लाख लोगों को वनों से रोज़गार मिलता है।

७. आय का साधन

वनों से सरकार को बड़ी आय होती है। अनुमान है कि चालीस करोड़ रुपये की आय प्रतिवर्ष सरकार को होती है।

वन देश की प्राकृतिक सुन्दरता को भी बढ़ाते हैं। सीमा के पास के वन शत्रुओं के आक्रमण से भी बचाव करते हैं।

परोक्ष लाभ

वनों से होने वाले परोक्ष लाभों का महत्त्व भी प्रत्यक्ष लाभों से किसी रूप में कम नहीं है। मुख्य-मुख्य परोक्ष लाभ ये हैं—

१. वनों का जलवायु पर प्रभाव

वनों से आस-पास के जलवायु पर काफी प्रभाव पड़ता है। वनों का ताप गर्मियों में आस-पास की भूमि से कम रहता है। सर्दियों की ऋतु में वनों की मिट्टी का ताप आस-पास की खुली मिट्टी से ऊंचा रहता है।

२. वनों का वर्षा और नमी पर प्रभाव

वनों के कारण उनके आस-पास की भूमि पर वर्षा कुछ अधिक होती है, ऐसा कुछ वैज्ञानिकों का मत है। वनों की वायु में नमी अधिक होती है। इसका कारण यह है कि वनों में रुकावट होने के कारण हवा तेज़ नहीं चलती। इससे वहां का पानी भाप बनकर कम उड़ता है। वायु में नमी बनी रहने से, वनों के आस-पास के खेतों में कुहरा और ओस अधिक पड़ती है, जिससे खेत पाले से बचे रहते हैं।

३. मिट्टी का कटाव से बचाव

वर्षा की बूंदें वनों की धरती पर सीधी नहीं गिरतीं। धरती पर गिरने से पहले वे पेड़-पौधों, उनको डालियों और पत्तियों से टकरा जाती हैं जिससे उनकी

चाल धीमी हो जाती है। वे धरती पर धीरे से और छोटी बूंदों के रूप में गिरती हैं। धरती पर पेड़-पौधों की पत्तियां पड़ी होने के कारण ये बूंदें सीधे धरती पर न गिरकर पत्तियों पर गिरती हैं। इससे पानी की बूंदों द्वारा भूमि का कटाव नहीं हो पाता। ये सड़ी-गली पत्तियां धरती की पानी सोखने की क्षमता को भी बढ़ा देती हैं, जिससे बरसात का बहुत-सा पानी वहां की धरती द्वारा चूस लिया जाता है। इससे दो लाभ होते हैं—धरती में देर तक नमी बनी रहती है और बहने के लिए फालतू पानी कम रह जाने से बाढ़ नहीं आती।

४. वनों से बाढ़ में कमी

जो फालतू पानी इकट्ठा होकर बहने लगता है, वह भी पेड़-पौधों से टकराकर अपनी तेज़ चाल खो देता है। तेज़ चाल से बहता हुआ पानी धरती की ऊपरी उपजाऊपरत को काटकर बहा ले जाता है। इससे दो तरह से हानि होती है—एक तो उपजाऊ मिट्टी के कटकर बह जाने से धरती की उपजाऊ शक्ति बहुत कम हो जाती है, दूसरे पानी में घुलकर बही हुई यह मिट्टी सपाट इलाके में नदी के पाट में बैठ जाती है। इससे नदी के पाट में पानी के समाने की जगह कम हो जाती है और पानी किनारों की ओर फैलने लगता है। वह किनारों की मिट्टी को तो तोड़ता ही है, बाढ़ के रूप में फैल भी जाता है। पेड़-पौधों की जड़ें भी अपने आस-पास की मिट्टी को पकड़ रखती हैं। इससे बहता पानी मिट्टी को बहा नहीं पाता। जड़ों के गहराई तक गए होने के कारण, वर्षा का पानी भी धरती में गहराई तक चला जाता है। जड़ें पानी के लिए मार्ग का काम करती हैं। धरती वर्षा के पानी को जितना अधिक सोखेगी, उतना ही उसमें नमी देर तक बनी रहेगी और सूखे के दिनों में पेड़-पौधों को पानी मिलता रहेगा।

५. वनों से धरती की ऊपरी परत के जल का बचाव

धूप और वायु खुली धरती की नमी को बड़ी जल्दी सोख लेते हैं। किन्तु

वनों से ढकी हुई धरती पर इनका सीधा प्रभाव नहीं पड़ता, जिससे नमी देर तक बनी रहती है।

६. वन मिट्टी को उड़ने से बचाते हैं

जब तेज हवाएं चलती हैं तो वे धरती की ऊपरली परत की मिट्टी को अपने साथ उड़ाकर ले जाती हैं। धूल-भरी आंधी यही मिट्टी तो होती है। परन्तु जिस धरती पर घास या पेड़-पौधे होते हैं, उसकी मिट्टी उड़ने नहीं पाती। वहां जड़ें मिट्टी को पकड़े रहती हैं। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि धरती पर सदा घास-पात की हरी चादर फैली रहे। जहां मरुस्थलों की हद है, वहां वृक्षों की हरी दीवार खड़ी कर दीजिए जिससे वे आगे न बढ़ सकें।

धरती का जो भाग वनों के कट जाने से और उपजाऊ मिट्टी के उड़ जाने से रेतीला बन गया है, उसे दोबारा हरा-भरा करने के प्रयत्न हो रहे हैं। इस प्रकार की घासें और पेड़-पौधे विकसित कर लिये गए हैं, जो रेतीली भूमि में उग सकें और बिना पानी के टिक सकें।

७. वनों से धरती की उपजाऊ शक्ति में वृद्धि

वनों से धरती की उपजाऊ शक्ति बढ़ जाती है। पत्ते सड़-गलकर धरती में मिल जाते हैं। ये खाद का काम करते हैं। पशुओं की विष्ठा और पक्षियों की बीट भी खाद का काम करतो है।

८. वनों का स्वास्थ्य पर प्रभाव

वनों का मनुष्य के स्वास्थ्य पर भी बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है। वनों की वायु शुद्ध होती है। धूल-धुआं तथा रोगों के कीटाणु वनों की हवा में बहुत कम होते हैं। यह देखा गया है कि जो गांव वनों के पास होते हैं, उनमें हैजा और मियादी बुखार बहुत कम फैलते हैं।

९. पशु-पक्षियों को संरक्षण

वन पशु-पक्षियों को संरक्षण देते हैं। जब वन नष्ट होते हैं तो ये भी नष्ट हो जाते हैं। अब तो कितने ही वन्य पशुओं के शिकार पर पाबन्दी लगा दी गयी है। पशुओं को सबसे अधिक खतरा तो शिकार करने वाले मनुष्य से ही होता है।

हमारे देश के वन

पहले बिना जोती भूमि को वन कह देते थे, फिर उसमें चाहे पेड़-पौधे उगे हों या न उगे हों। आजकल 'वन' उसी क्षेत्र को कहा जाता है, जिसमें घने वृक्ष और झाड़ियां हों।

एक समय था जब यह समझा जाता था कि मानव सभ्यता के विकास में 'वन' एक बड़ी रुकावट है। वनों के कारण खेती-योग्य भूमि की कमी भी अनुभव होती थी। इससे आने-जाने में भी रुकावट पड़ती थी। खेती को उजाड़ने वाले जानवर वनों में छिपे रहते थे, इसलिए ऐसा समझा जाता था कि हमारे अनेक कष्टों का कारण ये वन ही हैं।

यही कारण था कि उस समय बिना सोचे-विचारे अंधाधुन्ध जंगल काट दिए गए। यह सिलसिला लम्बे समय तक चलता रहा। बाद में जब यह पता चला कि वनों का रहना आवश्यक है और उनसे अनेक लाभ हैं तो वनों को नष्ट होने से बचाने, उनका संरक्षण करने, परती भूमि में वृक्ष लगाकर नये वन तैयार करने का कार्य शुरू हुआ। तब से देश में वन-विज्ञान की नींव पड़ी। वनों की देख-भाल करनेवालों को प्रशिक्षण देने के लिए कोई दो साल पहले देहरादून में

'फॉरेस्ट रेंजर स्कूल' का प्रारम्भ हुआ। बाद में देश के दूसरे भागों में भी प्रशिक्षण की व्यवस्था हुई और देहरादून में ही 'वन अनुसंधान संस्था' की नींव पड़ी। इस संस्था ने वनों की रचना, प्रबन्ध, वनों से प्राप्त होनेवाले कच्चे माल की उपयोगिता और संरक्षण आदि का नियमित प्रबन्ध किया।

इस समय हमारे देश की कुल भूमि के चौथे भाग से भी कम भूमि पर वन हैं। वन-भूमि का अनुपात २३ प्रतिशत है। हमारे देश की आवश्यकता और योजना यह है कि कम से कम एक तिहाई भूमि पर वन लगे हों।

वनों के संरक्षण के लिए केन्द्रीय सरकार में 'वन संरक्षण बोर्ड' नामक संस्था है। वनों के सम्बन्ध में नीति बनाना और उसे सारे देश में लागू करने के लिए राज्य सरकारों से अनुरोध करना, इस संस्था का कार्य है।

हमारे देश के विभिन्न राज्यों में वन-भूमि का अनुपात एक-सा नहीं है। अधिकांश वन मध्य प्रदेश, असम, महाराष्ट्र, गुजरात, आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा, जम्मू-कश्मीर, हिमाचल एवं उत्तर प्रदेश के पहाड़ी क्षेत्र में हैं।

मैदानी क्षेत्र में वन बहुत कम हैं।

जलवायु और मिट्टियों की विभिन्नता के कारण वनों को मुख्य रूप से चार भागों में बांटा गया है—

१. सदाबहार वन

इस तरह के वन अधिक वर्षा वाले इलाकों में पाए जाते हैं। असम प्रदेश, पूर्वी हिमालय और पश्चिमी घाट के वन सदाबहार वन हैं। इन वनों में सदा हरे-भरे रहने वाले, घने और ऊंचे वृक्ष होते हैं।

२. पतझड़ी वन

ये वन हिमालय की तराई और दक्षिण के पठार में पाए जाते हैं। हमारे देश के अधिकतर वन इसी किस्म के हैं। ये बरसात के दिनों में खूब फैलते हैं। गर्मी की ऋतु के प्रारम्भ होने पर इनके पत्ते झड़ जाते हैं। सागवान की लकड़ी

जो इमारती लकड़ियों में सबसे बढ़िया मानी जाती है, इन्हीं वनों से मिलती है। साल के विशाल वृक्ष जो अपनी कठोर लकड़ी के लिए प्रसिद्ध हैं, वे भी इन्हीं वनों में पाए जाते हैं।

३. पहाड़ी वन

ये वन दक्षिण भारत की ऊंची पहाड़ियों पर और असम तथा पूर्वी हिमालय की पहाड़ियों पर पाए जाते हैं। इन वनों के प्रमुख वृक्ष हैं—देवदार, चीड़ और बलूत आदि।

४. सूखे वन

ये राजस्थान, पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश के कुछ भागों में पाए जाते हैं। इन वनों में वृक्ष छोटे आकार के और कीकर-बबूल जैसे कांटेदार होते हैं।

इसके अतिरिक्त समुद्री तट के वन और नदियों के डेल्टाओं में और वन भी हैं। पानी की सुगमता के कारण वन भी खूब हरे-भरे रहते हैं।

हमारे देश में वनों की स्थिति चिन्ताजनक है। इसके कई कारण हैं। पहला तो यह है कि हमारे देश में जितनी भूमि पर वन होने चाहिए, उतनी भूमि पर नहीं हैं। दूसरे, वन सारे देश मे एक जैसे बंटे हुए नहीं हैं। किसी भाग में वन-भूमि का औसत ७ प्रतिशत है तो कहीं ५० प्रतिशत। तीसरा कारण यह है कि कुछ वन पहाड़ों पर इतनी ऊंचाई पर हैं कि उनसे कोई लाभ नहीं उठाया जा सकता। क्योंकि इन वनों की लकड़ी काटना और उसे खपत वाले स्थान में पहुंचाना संभव नहीं है।

चौथा कारण यह है कि हमारे देश के पास अभी भी वैज्ञानिक साधनों और प्रबन्ध के आधुनिक तौर-तरीकों का अभाव है। इसलिए वनों से हमें पूरा-पूरा लाभ नहीं मिल रहा है। जब तक प्रति हैक्टर वन से होने वाला लाभ और कृषि-भूमि से होने वाला लाभ आस-पास नहीं पहुंच जाते, अर्थात् वनों से होने

वाले प्रत्यक्ष लाभ जब तक सन्तोषजनक स्थिति को नहीं पहुंच जाते तब तक हमें अपने प्रयत्न लगातार चालू रखने पड़ेंगे ।

वनों से मिलने वाले कच्चे सामान को कारखानों तक पहुंचाने के लिए हमें परिवहन के साधनों में भी सुधार करना पड़ेगा । यदि हम योजनापूर्वक वनों का विकास करें तो इससे जहां देश के जलवायु पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा और भूमि की उपजाऊ शक्ति में वृद्धि होगी, वहां बड़ी संख्या में रोजगार भी उपलब्ध होगा । ग्रामीण वर्ग के अशिक्षित लोगों को बड़ी संख्या में वनों में रोजगार मिलने पर कृषि पर बोझ कम पड़ेगा ।

वनों के विकास से गांवों में सस्ता ईंधन मिल सकेगा, जिससे ग्रामीण लोग गोबर के उपले बनाकर ईंधन के रूप में जलाना छोड़ देंगे और गोबर का उपयोग खाद के रूप में हो सकेगा ।

जहां तक वनों के सम्बन्ध में सरकारी नीति का प्रश्न है, सरकार ने सन् १९५२ में ही निश्चय कर लिया था कि देश की एक तिहाई भूमि पर वन होने चाहिए ।

वैसे, इससे भी पहले, सन् १९५० में ही वन-महोत्सव मनाने का श्रीगणेश हो गया था ।

वन-महोत्सव

"आपका यह श्रेष्ठ उपक्रम एक बार फिर इस बात की गवाही दे रहा है कि राष्ट्र के शारीरिक, सामाजिक तथा आर्थिक-हित के लिए वृक्षारोपण के महत्त्व के सम्बन्ध में लोगों में सक्रिय चेतना उत्पन्न करने में आपका देश अग्रभाग ले रहा है।"

अन्तर्राष्ट्रीय संस्था 'फूड तथा एग्रीकल्चरल ऑर्गनाइजेशन' के वन विज्ञान संचालक श्री लेलूप द्वारा प्राप्त बधाई-संदेश (१९५७)

हमारे देश में वन-महोत्सव समारोह का प्रारंभ १९५० ई० में हुआ था। इसके संस्थापक थे स्वर्गीय श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी।

तब से लगातार प्रतिवर्ष १ जुलाई को यह महोत्सव सारे देश में बड़े उत्साह से मनाया जाता है।

इसका उद्देश्य है वन-विज्ञान को लोकप्रिय बनाना तथा वृक्षों के प्रति जनता में प्रेम की भावना उत्पन्न करना। इस कार्य में जैसा उत्साह इस बार सारे देश की जनता ने तथा सरकारी अधिकारियों ने दिखाया है, वह प्रशंसनीय और अनुकरणीय है। यदि इसी उत्साह के साथ हम वर्ष-भर लगाए वृक्षों की

देख-भाल करने में सफल हुए और अगले पांच वर्षों तक इस कार्य के राष्ट्रीय और स्थानीय महत्त्व को समझकर प्रयत्नशील रहे तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि देश की शक्ल बदल सकती है।

शक्ल बदलने का अभिप्राय केवल इतनी बात से नहीं है कि सब ओर हरियाली दिखाई देने लगेगी, इससे भी बढ़कर हमारे समूचे राष्ट्रीय जीवन की भी शक्ल बदल जाएगी। इससे न केवल इमारती और जलावन की लकड़ी पर्याप्त मात्रा में और कम मूल्य में मिल सकेगी, अपितु फल, चारा और घास पर्याप्त मात्रा में मिल सकेंगे। अन्य बहुत-सी चीज़ें, जो वृक्ष हमें देते हैं, वे भी मिलेंगी और लाखों लोगों को रोजगार भी। ये तो प्रत्यक्ष लाभ हैं। जो अप्रत्यक्ष और दूरगामी लाभ हैं, उनकी चर्चा इसी पुस्तक में अन्यत्र कर दी है।

पर यह सब उस खेल की तरह नहीं होगा, जैसा कि मदारी सड़कों के किनारे दिखाते फिरते हैं। वे आपके सामने आम की गुठली बोएंगे और थोड़ी देर में छोटा-सा पौधा उग आएगा और उसमें फल भी लगा होगा।

प्रकृति के अपने नियम-कानून हैं। आपने वह दोहा सुना होगा—

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आए फल होय॥

'गीता' में भगवान् कृष्ण ने फल की आशा छोड़कर काम करने के लिए कहा है। बहुतों की समझ में यह बात नहीं आती है। हम तरह-तरह के काम करते हैं। उनमें फल की आशा हम चाहे न छोड़ सकें किन्तु यदि आप कोई बड़ा फलदार वृक्ष लगा रहे हों तो निश्चित रूप से आपको फल की आशा छोड़नी पड़ेगी।

एक छोटी-सी कहानी है, पर है बड़ी सुन्दर।

एक बूढ़ा आदमी सड़क के किनारे आम का पेड़ लगा रहा था। एक नौजवान ने देखा तो बोला, "बूढ़े बाबा ? आप यह पेड़ क्यों लगा रहे हैं ? यह आपके किस काम आएगा ?"

बूढ़ा पेड़ लगाते-लगाते बोला, "मेरे काम नहीं आएगा, दूसरों के काम तो आएगा। मैं इसके फल नहीं खाऊंगा तो और लोग तो खाएंगे। राह चलते लोग इसकी छाया में बैठकर विश्राम करेंगे। गर्मियों में आस-पास चरने वाले पशु और उनके ग्वाले भी तपती दोपहरी में इसकी छाया में बैठेंगे। पखेरू इसकी शाखाओं पर घोंसले बनाएंगे और बसेरा लेंगे। कुछ फल उनके हिस्से में भी आएंगे।

"जब तक यह फलता रहेगा, लोगों को फल खाने को मिलेंगे। इसके मीठे फल खाकर उन्हें आनन्द मिलेगा। सूखने पर इसकी टहनियां जलाने के काम आएंगी। तने की लकड़ी दूसरी कई चीजें बनाने के काम आएगी। क्या अब भी तुम कहोगे कि यह मेरा काम व्यर्थ है। और फिर सोचो, मैंने अपने बचपन और जवानी में जो फल खाए, वे क्या मेरे लगाए हुए पेड़ों के थे ?"

वृक्षों को प्यार करने वाले कवि अलेग्जेंडर स्मिथ ने तो यहां तक कहा है कि यदि आप चाहते हैं कि लोग आपको कभी न भूलें तो नगर बसाने या स्मारक-पदक ढलवाने के बजाय वृक्ष लगाइए, वे उन दोनों से अधिक चिरस्थायी होते हैं।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने वृक्षों के सम्बन्ध में एक नहीं, पचासों कविताएं लिखी हैं। वृक्षारोपण के सम्बन्ध में श्री युगजीत नवलपुरी द्वारा अनूदित उनकी कविता की कुछ पंक्तियां प्रस्तुत हैं—

प्रतिवेशी होकर रहो हमारे रहो सखा अपने बनकर,
छाया से शीतल करो हमारे प्रांगण को, पथ के कंकर
ढंक दे प्रसून की वृष्टि; हमारे वैतालिक विहंग आश्रम
आश्रय शाखाओं में पाएं, प्रति वर्ष-वर्ष पुष्पित उद्यम
अभिनन्दन वन्दन गंध करे मिश्रितरस-वृष्टि गीतिका में,
संध्यावन्दन के गायन में। गुंजित निकुंज वीथिका में,
मंजुल मर्मर में प्राण मातृका-मंत्र उच्छ्वासित हुआ करे।
धरती के अन्तःपुर से, दिनकर के प्रकाश में, जाड्य हरे॥

मैंने कहीं पढ़ा था—एक प्रगतिवादी ईसाई सन्त अपने शिष्यों सहित किसी वन-मार्ग से जा रहे थे तो उन्होंने शिष्यों को कहा कि ऐसे मार्गों में फलदार वृक्ष लगाने चाहिए। यह बड़े पुण्य का कार्य है।

शिष्यों को लगा कि हमारे प्रगतिशील गुरु की यह बात तो एकदम पुराण-पंथियों-जैसी है। उन्होंने नम्रतापूर्वक अपनी असहमति प्रकट करते हुए कहा कि आप भी अन्धविश्वास का पोषण करने वाली ऐसी बात कह रहे हैं।

सन्त बोले, "यह अन्धविश्वास की बात नहीं, प्रत्यक्ष सत्य की बात है। एक फलदार वृक्ष लग जाने के बाद न तो सिंचाई के लिए पानी मांगता है और न खाद। वह प्रतिवर्ष फलों की फसल देता है और यह सिलसिला वर्षों चलता रहता है। बिना खर्च किए फल बांटने का यह यज्ञ क्या कम महत्त्व का है! अन्न-सत्र तो कोई धनवान् ही चला सकता है किन्तु फलदार वृक्ष लगाने का काम तो निर्धन भी कर सकता है।"

मरु-भूमि में पेड़-पौधे लगाकर उसे हरा-भरा करने का काम तथा नये वन लगाना और पुराने वनों की सुरक्षा का काम मुख्य रूप से सरकार का है। किन्तु शहरी और ग्रामीण इलाकों में वृक्ष लगाने का कार्य जनता के सहयोग के बिना कभी भी पूरी तरह सम्पन्न नहीं हो सकता।

पौधा लगा देने मात्र से हमारा कर्तव्य पूरा नहीं हो जाता। पौधे को पाल-पोसकर इतना बड़ा कर देने की जिम्मेदारी भी हमारी है कि वह पशुओं की पहुंच से बाहर हो जाए। जहां तक निजी भूमि में लगाए गए पेड़-पौधों का सवाल है, हर कोई अपनी जिम्मेदारी को समझता है पर जब सामूहिक जीवन की बात आती है, उसे गांव की शामिलात भूमि में वृक्ष लगाने की या कुएं, मन्दिर, तालाब के पास वृक्ष लगाने की बात आती है या फिर सड़क के दोनों ओर वृक्ष लगाने की बात आती है तो हम कन्नी काट जाते हैं। हम हर बात में निजी लाभ को सामने रखते हैं और सामूहिक लाभ की बात भूल जाते हैं।

यदि ग्राम पंचायतें इस काम को अपने हाथ में ले लें, और उनको लेना ही चाहिए, तो श्रमदान द्वारा यह कार्य हो सकता है और अच्छे रूप में हो सकता है या फिर यह व्यवस्था की जाए कि जो भी व्यक्ति शामिलात भूमि में वृक्ष लगाएगा, उस वृक्ष की पत्तियों और फलों का वह मालिक होगा। वृक्ष की सूखी टहनियों पर उसका अधिकार होगा और विशेष अवसरों पर जैसे शादी-ब्याह या मृतक-संस्कार के लिए उसे वृक्ष की कुछ टहनियां जलावन के लिए काटने का अधिकार होगा। यह बात अलग है कि उसे पंचायत से इसकी पूर्व-स्वीकृति लेनी होगी।

यह एक प्रलोभन है, जो ग्रामीणों को सड़कों के किनारे या शामिलात भूमि में वृक्ष लगाने के लिए प्रेरित कर सकता है।

व्यक्ति को काम की प्रेरणा देने वाले चार प्रमुख कारण होते हैं। इसमें पहला है धर्म-भावना, दूसरा है सामाजिक चेतना, तीसरा है आत्महित और चौथा है हॉबी या शौक।

इनमें से किसी में कोई भी भाव हो सकता है। पर जब तक इनमें से कोई एक भी कारण नहीं होगा, तब तक मूर्ख से मूर्ख आदमी भी किसी काम में नहीं लगता। हर प्रकृति एवं रुचि के नागरिक वन-महोत्व के महायज्ञ में उत्साह से भाग ले सकें, इसके लिए हर उपाय को काम में लाना चाहिए।

वन महोत्सव के आन्दोलन को सफल बनाने के लिए स्थानीय मिट्टी और जलवायु के अनुकूल वृक्षों को चुनने और वृक्ष लगाने के सही तरीके की जानकारी आवश्यक है। यद्यपि यह ठीक है कि ग्रामीण लोग साधारणतया वृक्ष लगाने की परम्परागत विधि से परिचित होते हैं और आस-पास जैसे वृक्ष होते हैं, वैसे ही वृक्ष वे भी लगाते हैं। पर यदि वनस्पति विज्ञान की खोजों को प्रयोगशालाओं से गांव तक पहुंचाना है तो नयी विधियों और वृक्षों की नयी उपयोगी किस्मों को वहां तक पहुंचाने का काम सरकार को अपने हाथ में लेना होगा। यह अकेले व्यक्ति के वश का काम है भी नहीं।

वन-महोत्सव की सफलता तभी संभव है जबकि सरकार और जनता पूरे सहयोग से काम करे।

वैसे तो किसी भी खाली स्थान में वृक्ष लगाए जा सकते हैं। किन्तु यदि जगहों के नामों की सूची बनानी हो तो छोटी पाठशालाओं से लेकर कॉलेजों तक को, शामिलात भूमि में सड़कों के किनारे, मन्दिर, मस्जिद और गुरुद्वारे के आस-पास, अस्पताल, पंचायतघर, या सरकारी दफ्तरों के अहातों को वनों के लिए चुनना चाहिए। कुएं, तालाब और नदी या नहर के किनारे का स्थान भी वन-स्थली के लिए चुना जा सकता है। खेती की भूमि में भी दूर-दूर वृक्ष लगाना अब लाभदायक समझा जाता है।

नहरों के किनारे चौड़े पत्तों वाले वृक्षों की पातें उगाई जा सकती हैं। जहां बांध बनाकर नदियों का पानी रोका गया है, वहां कितनी ही उपजाऊ भूमि और जंगली क्षेत्र जलमग्न हो गए हैं। इन विशाल बांधों के किनारे की पहाड़ियों या घाटियों में बड़ी संख्या में वृक्ष लगाए जाने चाहिए। इससे जहां जलमग्न क्षेत्र के वृक्षों की कमी पूरी होगी, वहां वर्षा से होने वाला भूमि का कटाव भी रुकेगा और जलाशयों के तल में ज्यादा मिट्टी नहीं जमेगी।

आइए, वृक्ष लगाएं

"जब मैं एक अच्छे वृक्ष को, जो बहुत दिनों में बड़ा होकर अपने सम्पूर्ण वैभव को फैलाता है, मनमाने ढंग से काटे जाते हुए देखता हूं तो दिल दुःख से भर जाता है। जनता को इसे रोकने के लिए जनमत तैयार करना चाहिए। यदि पेड़ों को काटना अति आवश्यक हो गया तो हमें ऐसी परम्परा स्थापित करनी चाहिए कि एक वृक्ष की जगह दो नये वृक्ष लगाए जाएं।"

—श्री जवाहरलाल नेहरू

हमने यह अच्छी तरह समझ लिया है कि वृक्ष हमारे लिए कितने महत्त्वपूर्ण हैं। अब हम अपनी सामर्थ्य के अनुसार वृक्षों की सुरक्षा का सदा ध्यान रखेंगे और सुविधानुसार नये पेड़-पौधे लगाने का भी भरसक प्रयत्न करेंगे। हम शहर में रहते हों या गांव में, जैसा और जितना स्थान मिलेगा, उसके अनुसार छोटे-बड़े पौधें अवश्य लगाएंगे। इसलिए अब हमें पौधों के सम्बन्ध में कुछ बातें अवश्य जान लेनी चाहिए।

पौधे को हम तीन भागों में बांट सकते हैं—जड़ें, तना और शाखाएं।

जड़ें पौधे को जहां खड़ा रखने में सहायता देती हैं, वहां हवा के कारण गिरने से भी बचाती हैं। फिर भी जब कभी जोर की आंधी आती है तो पेड़ों की शाखाएं टूट जाती हैं और कोई-कोई पेड़ तो जड़ से उखड़कर गिर पड़ता है।

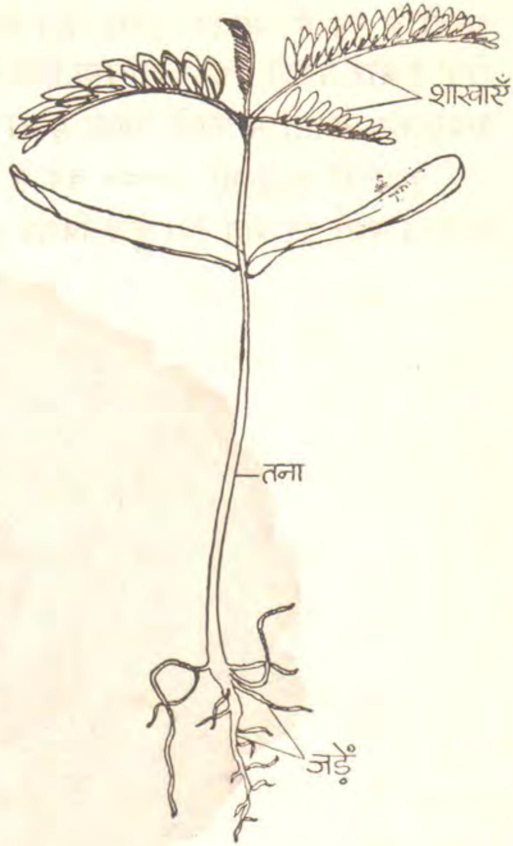

इसके अतिरिक्त जड़ें धरती से पेड़-पौधों के लिए भोजन भी ग्रहण करती हैं।

तना पेड़ का महत्त्वपूर्ण भाग होता है। सामान्य रूप से तने का घेरा गोल होता है। इस भाग की गोलाई और ऊंचाई पेड़ों की किस्म के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है। तने के ऊपर वाले छोर से पेड़ में शाखाएं निकली होती हैं। ये शाखाएं चारों ओर फैलकर प्रायः छत्र के आकार में फैल जाती हैं।

छत्र बहुत-सी शाखाओं के फैलाव से बनता है। इसी के पत्ते, फूल और फल लगते हैं।

पत्ते पौधे के लिए भोजन बनाने का काम करते हैं। शाखाएं इस तरह फैलती हैं कि उन्हें अधिक से अधिक प्रकाश मिल सके। सूर्य के प्रकाश से पौधों को भोजन मिलता है। पत्तियां जड़ों द्वारा सोखे गये पानी और हवा में से ली गयी गैस को मिलाकर प्रकाश की उपस्थिति में पौधों के लिए भोजन बनाती हैं।

पौधे एक साथ दो तरह से बढ़ते हैं—एक तो ऊंचाई में और दूसरे मोटाई

में। प्रत्येक पेड़ की ऊंचाई और मोटाई बढ़ने की अपनी किस्म के अनुसार एक सीमा होती है।

पेड़ों की लकड़ी उम्र पाकर पक्की हो जाती है। प्रायः पक्की और कच्ची लकड़ी के रंग में अन्तर होता है। कच्ची लकड़ी हल्का पीलापन लिये सफेद होती है और पक्की लकड़ी कालिमा लिये भूरे रंग की होती है। कुछ वृक्षों का तना पन्द्रह-बीस बरसों में पकने लगता है तो कुछ का और अधिक समय लेता है।

वृक्षों की आयु भी ७०-८० वर्ष से लेकर सवा सौ वर्ष तक होती है। यह सामान्य वृक्षों की बात है। कुछ विशेष वृक्ष तो हजारों साल के होते हैं।

वृक्षों की आयु का पता उनके तने की काट में घेरों की संख्या को गिनकर लगाया जा सकता है।

वृक्षों का प्रजनन कई तरह से होता है। प्रायः वृक्षों में फूल लगते हैं। इन फूलों में पुरुष और स्त्री दोनों तरह के अंग भी हो सकते हैं। कई वृक्षों में एक ही फूल में पुरुष और स्त्री के अंग होते हैं। कुछ वृक्षों में ऐसा भी होता है कि एक

वृक्ष में केवल पुरुष अंगों वाले फूल आएं और दूसरे में केवल स्त्री अंगों वाले फूल आएं।

फूल आने का समय भी सब में एक जैसा नहीं होता। इसमें वृक्ष की किस्म, धरती की उपजाऊ शक्ति और वहां का मोसम मिलकर कारण बनते हैं।

बहुत से वृक्षों में बीज लगते हैं। जब वृक्ष पूरी ऊंचाई में बढ़ चुकता है तो उसकी शाखाएं घनी होने लगती हैं। इस समय वृक्ष में जो बीज लगते हैं, वे बढ़िया किस्म के होते हैं। उपजाऊ धरती, पर्याप्त गर्मी और फैलने के लिए खुली जगह हो तो बीज बढ़िया निकलते हैं।

पेड़-पौधे बीजों के अतिरिक्त दूसरे तरीकों से भी उगाए जाते हैं। कुछ पेड़-पौधे कलम लगाकर भी उगाए जा सकते हैं। कुछ में धरती के पास अंखुए निकलते हैं। वे सावधानी से उखाड़कर दूसरी जगह लगा दिए जाते हैं। बांस में यही होता है।

बड़ का पेड़ कलम द्वारा भी लग जाता है। इस तरह लगाने का सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि पेड़ जल्दी ही इतना बड़ा हो जाता है कि इसकी अधिक देखभाल करने की आवश्यकता नहीं रहती।

बड़ की कोई तीन मीटर लम्बी टहनी काट ली जाय और उस पर की छोटी टहनियों को काटकर, सभी पत्तों को भी तोड़ दीजिए। अब इसका एक तिहाई भाग अच्छी तरह तैयार किए हुए गढ़े में गाड़ दीजिए। ध्यान रहे कि मोटा भाग धरती में गाड़ना होगा। इसके चारों ओर कांटेदार झाड़ियां काटकर बांध दीजिए। बरसात के प्रारम्भ में, लगा देने पर यह टहनी जड़ पकड़ लेगी और पहले ही दिन इसकी लम्बाई धरती से ऊपर दो मीटर के लगभग होगी।

यदि एक ही किस्म के कई वृक्ष लगाने हों तो बीज बोकर उनकी पौध तैयार कर लेनी चाहिए। बीज अपने पास न हो तो बीज बेचने वालों से खरीदे जा सकते हैं। मिलने को तो पौध भी मिल जाती है पर यह सुविधा सब जगह नहीं होती और खर्च भी अधिक होता है।

गांवों में शामिलात भूमि पर वृक्ष लगाने का काम पंचायतों द्वारा होना चाहिए। कस्बों और नगरों में सड़कों के किनारे पेड़ लगाने का काम नगर-पालिकाओं को करना चाहिए।

१९७६ ई० को नयी दिल्ली नगरपालिका ने अपने क्षेत्र में नागरिकों को बिना मूल्य पेड़ की पौध देकर प्रशंसनीय और अनुकरणीय कार्य किया है। इसी प्रकार देश भर में हरेक नगर में बिना मूल्य या नाम मात्र मूल्य में अपने नगर के लिए उपयुक्त पेड़-पौधों की पौध नगरपालिकाओं द्वारा उगाकर बांटी जानी चाहिए। घरों के आगे-पीछे की क्यारियों में अमरूद, अनार, पपीता आदि फलदार पेड़ आसानी से लगाए जा सकते हैं। फूलों वाले छोटे पेड़ भी घरों में लगाए जा सकते हैं। इसमें कनेर, अमतास, गुलमोहर तथा हरसिंगार विशेष उल्लेखनीय हैं। गमलों के गुलाब, रात की रानी, मोतिया, पाम, मोर-पंखी आदि सुन्दर देशी-विदेशी मौसमी फूल लगाए जा सकते हैं। बेलों में मालती, चमेली, बोगन, बेलिया आदि लगाकर घर-आंगन की शोभा बढ़ाई जा सकती है। पौधों की हरियाली बारह मास आंखों को सुख देती है। सुन्दर, सुगन्धित रंग-बिरंगे फूल पूजा में चढ़ाने, फूलदान सजाने, जूड़े बांधने आदि के लिए घर में ही सुलभ हो जाते हैं। आंगन की फुलवाड़ी या गमलों में पौधे लगाने के लिए बहुत समय और श्रम की जरूरत नहीं पड़ती। आप चाहें तो गुलाब मोमिया, रात की रानी जैसे फूलों के पौधे लगा सकते हैं। ये एक बार लग जाने पर वर्षों टिके रहते हैं। इनकी समय पर छंटाई करने और आवश्यकता पड़ने पर खाद-मिट्टी डाल देने से बढ़िया फूल आते रहते हैं। कीड़ा इन पौधों को भी लगता है। कीड़ामार दवाई को घरेलू फ्लिट से छिड़ककर कीड़ों से बचाव किया जा सकता है। गमलों की मिट्टी सख्त हो जाये तो पौधे की बढ़वार रुक जाती है। इसलिए पौधे के चारों ओर गुड़ाई कर देनी चाहिए। जड़ों तक भी प्रकाश पहुंच जाए तो यह पौधों के स्वास्थ्य के लिए बहुत अच्छा है। पर इसका यह अभिप्राय नहीं है कि आप जड़ों को खोदकर नंगा कर दें।

यदि आप मंझोले आकार के वृक्ष जैसे गुलमोहर, अमलतास, आड़ू, अमरूद, अनार, कचनार आदि लगाना चाहें तो पौधे बेचनेवालों से स्वस्थ-सा पौधा लेकर और छोटा-सा गढ़ा खोदकर उसमें लगा दीजिए। ठीक छोटे बच्चे की तरह छोटे पौधों की भी अधिक देखभाल करनी पड़ती है। और यदि पौधा घर की दीवार के बाहर की ओर है, जहां उसे सड़क पर चलने वाले पशुओं द्वारा खाए जाने का भय हर समय मौजूद है तो आपको बाड़ लगाने की आवश्यकता पड़ेगी। गांवों में जहां शामिलात धरती में पौधे लगाए जाते हैं, वहां चरनेवाले पशुओं की भरमार होती है। ऐसे स्थान पर पौधे के चारों ओर कांटेदार झाड़ियों की बाड़ लगा देने से पशु पौधे से दूर ही रहते हैं। यदि चरवाहों को प्रेरित करके पौधे लगाने के लिए उत्साहित किया जाए तो तुरन्त तथा अधिक लाभ हो सकता है। चरागाहों में छायादार वृक्ष होने से चरवाहों और पशुओं को धूप में विश्राम करने की बड़ी सुविधा होती है।

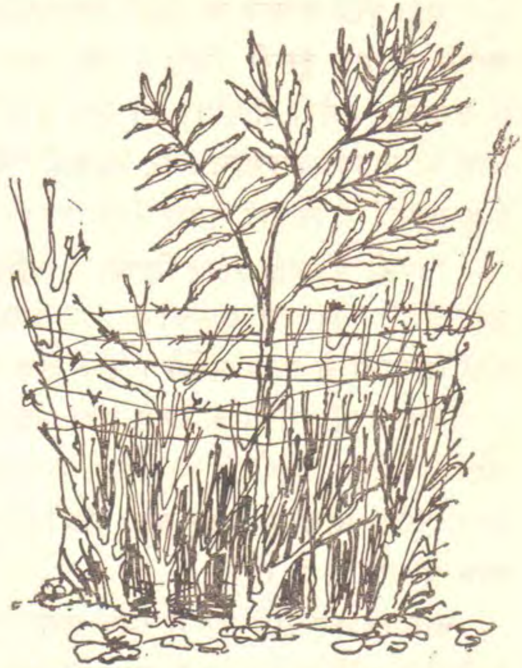

पशुओं में पौधों को सबसे अधिक हानि बकरी पहुंचाती है। दूसरे पशु जिन बहुत-से पौधों को नहीं खाते हैं, यह उन्हें भी खा जाती है। इसके अतिरिक्त पतले किन्तु ऊंचे पौधों को, जिन तक साधारणतया इसकी पहुंच नहीं होती है, यह अगली दोनों टांगें उठाकर पौधे पर टेक देती है और फिर इन्हीं टांगों पर अपना बोझ डालकर पौधे को झुका लेती है और कोंपलों को चट कर डालती है। इससे कांटेदार झाड़ियों के पत्ते भी नहीं बचते हैं। पौधों को चरने के अलावा

बकरी के खुरों से भूमि का कटाव भी हो जाता है ।

जहां खुली जगह में वृक्ष लगाने हों, वहां ढाई-तीन फुट लम्बा-चौड़ा और इतना ही गहरा गड्ढा खोदकर, पत्थर-कंकर निकाल लेने चाहिए और मिट्टी में खाद मिलाकर फिर गड्ढे में भर देनी चाहिए । गड्ढे के बीचोंबीच वृक्ष लगाना चाहिए । इसके लिए साथ ही बाड़ की व्यवस्था भी कर देनी चाहिए ।

जहां पौधे लगाने का कार्य नगरपालिका जैसी संस्था के जिम्मे हो तो वृक्ष लगाने की एक दूसरी विधि है, जो कम खर्चीली है । कोलतार के खाली ड्रमों में लगाकर, नर्सरी में पौधों को बड़ा होने देना चाहिए । जब पौधे इतने बड़े हो जाएं कि ज्यादा देखभाल और सिंचाई की आवश्यकता न रहे तो बरसात में इन्हें सड़कों के किनारे तैयार किए गड्ढों में लगा दिया जाए ।

दिल्ली में, जहां नगर निगम ने बस्तियों में पशुओं को रखने पर पाबन्दी लगा दी है और पशु-पालकों के लिए अलग बस्तियां बसा दी हैं, पहले की अपेक्षा पौधे आसानी से पनप सकेंगे । उन्हें अब चौपायों से भय नहीं रहेगा ।

बालक भी पौधों के लिए सदा खतरा बने रहते हैं । ये सड़क पर चलते समय यों ही छोटे पौधों को नोंचते रहते हैं । विद्यालयों में यदि उन्हें पौधों से प्यार करना सिखाया जाए और पौधों का महत्त्व समझाया जाए तो इसका बड़ा लाभ हो सकता है ।

बालकों को पौधे पर से स्वयं फल तोड़कर खाने में जो मजा आता है, वह खरीदकर लाये बढ़िया फल खाने में नहीं आता है । मैंने अच्छे घरों के बच्चों को दूसरों के पेड़ों से चोरी-छिपे कच्चे अमरूद और अनार खाते देखा है । ये बालक जल्दी में एक कच्चा फल तोड़ने के चक्कर में पूरी शाखा को तोड़ डालते हैं । फूलों पर झपटते समय भी ये ऐसा ही करते हैं । इनके हाथों में जो हाल लूट की पतंग का होता है, वही फल-फूल लूटते समय पौधों का ।

कुछ पौधे निश्चित रूप से ऐसे हैं जिन्हें पशु नहीं खाते । इन्हें अधिक सुरक्षा की आवश्यकता नहीं होती । एक वृक्ष जो उत्तर भारत में बड़ी संख्या में और

सफलता के साथ लगाया गया है, सफेदा है। अंग्रेजी में इसे 'यू-क्लिपटिस' कहते हैं। इसकी तीखी गंध के कारण पशु इसे नहीं खाते। यहां तक कि इसे बकरी भी नहीं खाती और यह बढ़ता भी बड़ी तेजी से है। यह सीधा ऊपर को बढ़ता है और चौड़ाई में नहीं फैलता। पांच-छह वर्षों में यह पचीस फुट तक बढ़ जाता है। यह देखने में भी सुन्दर लगता है। पर इसकी छाया नहीं होती। सर्दी-जुकाम में इसके पत्तों को सूंघना या इसके तेल को सूंघना लाभदायक होता है। इसका तेल अनेक दवाइयों में काम आता है और इसकी गंध के पास मच्छर नहीं आते। रेगिस्तान के प्रसार को रोकने के लिए भी यह बड़ा उपयोगी है। कारण यह है कि यह कम पानीवाले स्थानों में भी आसानी से लग जाता है।

वृक्ष लगाते समय यह बात विशेष रूप से ध्यान रखने की है कि कहां कौन-से वृक्ष लगाए जाएं। कहने का अभिप्राय यह है कि जिस जगह वृक्ष लगाने हों, उस जगह की मिट्टी, मौसम और आवश्यकता को ध्यान में रखा जाए।

यह बात सभी जानते हैं कि किसी भी स्थान में सभी तरह के वृक्ष नहीं उगाए जा सकते। विपरीत परिस्थितों में यदि कुछ वृक्ष लग भी जाएं तो भी उनकी बढ़वार ठीक से नहीं होगी। वृक्षों की किस्मों का अपना-अपना स्वभाव होता है। किन्तु मिट्टी और मौसम आदि के बारे में वनस्पति-शास्त्रियों की राय मिल सकना आसान नहीं होती। इसलिए पास पड़ोस में जिस-जिस जाति के वृक्ष बड़ी संख्या में और अच्छी हालत में हों उस-उस जाति के वृक्ष लगाने चाहिए।

यह ठीक है कि कई स्थानों में ऐसे वृक्ष सफलतापूर्वक लगाए जा चुके हैं, जिनका पहले वहां कोई नाम तक नहीं जानता था। पर यह तभी संभव है जब वृक्ष लगाने का काम बड़े स्तर पर करना हो और वृक्ष विज्ञान के विशेष जानकारों द्वारा प्रयोग के रूप में यह देख लिया गया हो कि अमुक-अमुक नयी जातियों के वृक्ष इस प्रकार की मिट्टी और जलयायु में सफलतापूर्वक उगाए जा सकते हैं।

नगरों में पेड़ एक तरह की आवश्यकता को पूरा करते हैं तो गांवों में उन्हें

लगाने का उद्देश्य बिलकुल भिन्न हो सकता है।

नगरों में सड़कों के किनारे या बाग-बगीचे में पेड़-पौधे लगाए जाते हैं। इनमें बहुत-से ऐसे होते हैं, जिनमें फूल लगते हैं। कुछ वृक्षों के फूल चटक रंगों के होते हैं और कुछ के हलके रंगों के। चटकीले रंग के पुष्पों वाले पेड़ों को सजावटी वृक्षों में गिना जाता है। कुछ पेड़ ऐसे भी हैं जिनके पुष्प तो भड़कीले रंग के नहीं होते किन्तु उनकी पत्तियों की सुन्दरता देखने योग्य होती है। इसके अतिरिक्त कई वृक्षों की ऊपरी बनावट भी दर्शकों का ध्यान खींचती है। इन्हें भी शोभाकारी पेड़ों में गिना जाता है। कई वृक्ष अपनी शोभाकारी पत्तियों और घने फैले हुए छत्रों के कारण सड़कों के किनारे और बाग-बगीचों में छाया के उद्देश्य से लगाए जाने योग्य होते हैं।

फूलों वाले पेड़ों में देशी-विदेशी दोनों तरह के पेड़ हैं। सिरस, अमलतास, कचनार, पलाश, अशोक, कदम्ब, अगस्त्य, सेमल आदि देशी वृक्ष प्रायः देश भर में मिलते हैं। छाया की दृष्टि से नीम, जामुन और इमली अच्छे वृक्ष हैं। जामुन से फलों की और इमली से खटाई की आवश्यकता भी पूरी होती है।

हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा जिले में पुराने भागों के दोनों ओर आम के पेड़ों की कतारें बीसों मील तक आपको मिल जाएंगी । ये वृक्ष किसी बड़े सरकारी अभियान में नहीं लगाए गए थे । इनके पीछे हमारी सांस्कृतिक चेतना की यही भावना रही है कि फल वाले वृक्ष लगाना पुण्य-कार्य है । इन पुराने तंग मार्गों को, नयी आवश्यकता के अनुकूल मोटर मार्गों में बदलने से बड़ी संख्या में वृक्ष काटे गए हैं किन्तु नये वृक्ष लगाए नहीं गए ।

गांवों में पेड़ लगाते समय नीचे लिखी बातों का ध्यान रखना चाहिए—

१. फलवाले पेड़

नींबू, पपीता, अमरूद, अनार, आम, जामुन, कटहल, गलगल, केला, संतरा आदि ।

२. चारेवाले पेड़

कचना, बेर, बकायन, नीम, बबूल आदि ।

३. ईंधन और इमारती लकड़ी के पेड़

शीशम, बांस, बड़, पीपल, नीम, आम आदि ।

फलवाले पेड़ों से गांववालों को मीठे और स्वादिष्ट फल मिल सकेंगे । चारेवाले पेड़ छाया तो देते ही हैं, पत्तियों के रूप में हरा चारा भी देते हैं । और इनकी सूखी पत्तियां गोबर के ढेर में दिला दी जाएं तो बढ़िया खाद बनती है । कटहल आदि फल-सब्जी की आवश्यकता को पूरा करते हैं । नींबू, आम, गलगल आदि का अचार बनता है जो सालभर काम आता है ।

ईंधन और इमारती लकड़ी वाले पेड़ों से ईंधन और इमारती लकड़ी मिल जाती है । यदि ईंधन की आवश्यकता लकड़ी से पूरी हो जाए तो जलावन के लिए गोबर के उपले बनाने की गांववालों को आवश्यकता न पड़े और इस बचे हुए गोबर का खाद के रूप में उपयोग हो सके तो खेती की उपज में बहुत बढ़ोतरी हो सकती है ।

इमारती लकड़ी मकान बनाने, खेती के औजार बनाने और घरेलू आवश्यकता की दूसरी छोटी-मोटी चीजें बनाने के काम आ सकती हैं । अपनी आवश्यकता से अधिक लकड़ी होने पर उसे बेचकर नकद राशि भी कमाई जा सकती है ।

गांव में कुएं, तालाब आदि के आस-पास गोचर भूमि में तथा पाठशाला, मन्दिर आदि के पास वृक्ष लगाने का काम पंचायतों को अपने हाथ में लेना चाहिए ।

पेड़ लगाने का तरीका

बरसात शुरू होने से दो-तीन महीने पहले ही, जहां-जहां पेड़ लगाने हों, वहां तीन-चार फुट लम्बाई-चौड़ाई और गहराई के गड्ढे खोद लेने चाहिए । महीना-डेढ़ महीना इन गड्ढों को खुला छोड़ देना चाहिए । फिर बरसात शुरू होने से कोई महीना-भर पहले मिट्टी में खाद मिलाकर इन गड्ढों को भर देना

चाहिए। बरसात शुरू होने पर इन गड्ढों में पेड़ लगा देने चाहिए।

यह तरीका बहुत अच्छा है और इस तरह लगाए गए पेड़ों के सूखने की संभावना बहुत कम रहती है। फिर साधारणतया अनेक कारणों से थोड़े से पेड़ सूख भी सकते हैं। पर इससे आप यह न समझें कि यदि किसी कारण पहले से गड्ढे न खोदे जा सके हों तो पेड़ न लगाए जाएं। तुरन्त खोदे हुए गड्ढों में भी पेड़ लगाए जा सकते हैं। सरदी के मौसम में भी छोटे पेड़ लगाए जा सकते हैं।

बड़े पेड़ों को कोई दस मीटर की दूरी पर लगाना चाहिए। छोटे पेड़ों को पांच-छह मीटर की दूरी पर भी लगाया जा सकता है। दूरी तय करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पेड़ को फैलने के लिए पूरी जगह मिल जाए।

पौधों को एक जगह से उखाड़कर दूसरी जगह पर लगाते समय इस बात का भी ध्यान रखें कि उनकी जड़ें बिखरी हुई हों। प्रायः पौधों को एक जगह से उखाड़ते समय जड़ों को मिट्टी लपेटकर बांध दिया जाता है। इस तरह मिट्टी लपेटकर बांधना तब आवश्यक होता है, जब पौधों को कहीं दूसरी जगह ले जाना हो या तुरन्त न लगाना हो। किन्तु तुरन्त लगाते समय इसकी आवश्यकता नहीं होती। पौधा लगाते समय लिपटी हुई मिट्टी को हटा देना चाहिए।

पौधों को जानवरों आदि से बचाने के लिए उसके चारों ओर कांटेदार झांड़ियां काटकर इस तरह रख देनी चाहिए कि हवा से न उड़ें।

पेड़ों की कटाई-छंटाई

कई कारणों से पेड़ों की कटाई-छंटाई की भी आवश्यकता होती है। पेड़ों की कटाई-छंटाई करते रहने से दो लाभ होते हैं। एक तो यह कि पौधे की आवश्यकता के अनुसार उसे ऊंचाई या चौड़ाई में बढ़ने के लिए परिस्थिति पैदा की जा सकती है। फलवाले पेड़ों को ऊंचाई के बजाय चौड़ाई में फैलाना लाभदायक होता है। इससे टहनियों की संख्या बढ़ जाती है और फल अधिक

लगते हैं। दूसरे, इन फलों के कम ऊंचाई पर लगने के कारण तोड़ने में भी आसानी रहती है।

नगरों में जहां पेड़ सजावट के लिए और छाया के लिए लगाए जाते हैं, वहां भी कटाई-छंटाई इसलिए जरूरी होती है कि पेड़ देखने में अच्छे लगें। इस तरह पेड़ों को सूर्य का प्रकाश और गर्मी तथा हवा भी अच्छी तरह मिल जाती है। इससे पेड़ स्वस्थ तथा हृष्ट-पुष्ट रहते हैं और उन पर फल-फूल भी लगते हैं।

स्नान करने से जैसे हम प्रसन्नता का अनुभव करते हैं, ठीक वैसे ही पेड़-पौधे भी बरसात में नहाकर एकदम साफ-सुथरे और हरे-भरे दिखाई देने लगते हैं। प्रायः पत्तों पर धूल जम जाती है। इससे उनके रोम-कूप बन्द हो जाते हैं और विकास रुक जाता है। वर्षा में नहाने से सारी धूल धुल जाती है और पौधे अपने हरियाली से अत्यन्त सुहावने लगने लगते हैं।

पेड़ की कटाई-छंटाई ऐसे समय करनी चाहिए जब उनके बढ़ने का समय न हो। फूलवाले पेड़ों की छंटाई उस समय होनी चाहिए जब फूल आने का मौसम न हो।

पेड़ की कटाई-छंटाई के खास औजार आपके पास नहीं हों तो कोई बात नहीं। हो सकता है, कटाई-छंटाई कैसे करनी है, यह भी सबको मालूम न हो, आप भले ही इस झंझट में न पड़ें। मुख्य बात यह है कि आप पेड़-पौधे लगाएं। इससे जहां आप अपने लिए और आने वाली पीढ़ियों के लिए लाभदायक काम करते हैं, वहां समाज के लिए भी उपयोगी काम करते हैं।